फरवरी १९८८ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

विपश्यना संगोष्ठी - ८६

(क्रमशः)

विपश्यना से लाभ

सयाजी ऊ बा खिन के लेख में स्पष्ट किया गया है कि **विपश्यना** से होने वाले लाभ अनगिनत हैं। इनका विवरण **सामञ्ञ सुत्त** में उपलब्ध है। आर्य अष्टांगिक मार्ग का सही प्रकार से अनुसरण करने से स्रोतापत्ति, सकदागामि, अनागामि तथा अर्हत्व के फल के अलावा कई प्रकार की सिद्धियां भी सहज ही में प्राप्त हो जाती हैं। मन स्वच्छ हो जाने के कारण सामान्य जीवन में भी कार्य करने की क्षमता इतनी बढ़ जाती है कि आश्चर्य होने लगता है। इसका सबसे ज्वलन्त उदाहरण सयाजी का स्वयं का जीवन है जो सन १९५३ में ५५ वर्ष की आयु में ब्रह्मदेश की राज्य सेवा से निवृत हुए परन्तु १२ वर्ष तक शासन ने उन्हें अनेक महत्वपूर्ण पदों पर कार्य करते रहने के लिए पुनर्नियोजित किया। इनके लेख के साथ रेकार्ड के आधार पर उपलब्धियों के जो आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं उनके विशलेषण से पता चलता है कि सयाजी के कार्यकाल में उनके द्वारा सम्हाले गए महकमों में आश्चर्यजनक उपलब्धियां हुई। यही नहीं, शासनतन्त्र में व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर करने में भी उन्हें बहुत सफलता मिली।

बम्बई के मनो चिकित्सक डॉ. शान्ति शेठ का कथन है कि अब मैं दूसरों के प्रति गहरी प्रतिक्रिया नहीं करता। मेरे अन्दर समता का भाव जागा है और परिवार के सदस्यों तथा अन्य व्यक्तियों के प्रति भी समता का भाव उमड़ा है। अब कठिनाइयां मुझे अपनी चपेट में लेने की बजाय मेरे दाएं बाएं सरक जाती हैं जिससे मुझे प्रतिक्रिया करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है। ऐसे लगता है मानो मैं जीवन-सरिता में बड़ी शान्ति के साथ बिना प्रभावित हुए बहता चला जा रहा हूं। अब मुझे ऐसा भी लगने लगा है कि मन्दिरों में जाना, प्रार्थना करना, तथाकथित धर्मशास्त्रों का पढ़ना मानसिक विकास में बाधा ही उत्पन्न करते हैं।

बम्बई के वकील श्री मधुसूदन मोर के अनुसार इस बात के पुष्ट प्रमाण हैं कि इस साधना से मानव स्वभाव बदलने लगता है, उसके आचरण में सुधार होने लगता है, व्यसनों से मुक्ति होने लगती है और पारस्परिक सम्बन्ध निखरने लगते हैं। कोई एक दो नहीं, बल्कि बहुत बड़ी संख्या में नशा पता करने वाले लोग अपनी दुरावस्था से बाहर निकल रहे हैं। लोगों की कार्यक्षमता में वृद्धि होने लगती है। विद्यार्थी पढ़ाई में तेज होने लगते हैं। व्यावसायिक अपने-अपने व्यवसायों में अधिक अच्छे परिणाम लाने लगते हैं। निर्दयी सदय और उच्छृंखल संयत होने लगते हैं।

आस्ट्रेलिया के मि. रिचर्ड हैमरस्ले तथा जॉन क्रेगन ने लिखा है कि जब किसी व्यक्ति की माली हालत खराब हो जाती है अथवा पारस्परिक सम्बन्ध बहुत बिगड़ जाते हैं तब इस सच्चाई को दबाने के लिए वह व्यक्ति नशे का सेवन करने लगता है जिसकी गहरी छाप उसके मन पर पड़ती है। विपश्यना साधना ही एक ऐसी विधि है जिससे किसी भी प्रकार की गहरी से गहरी छाप को तज्जनित संवेदनाओं को देख-देख कर दूर किया जा सकता है।

हैदराबाद के श्री के .सीथारामुलु की स्वीकारोक्ति है अंतर्मन में होने वाली घटनाओं की अनुभूति करने से मेरा बाह्य दृष्टिकोण स्वतः ही बदलने लगा है। जीवन में उतार-चढ़ाव अब भी पूर्ववत् आते हैं परन्तु अनित्यबोध का सहारा लेकर अपने आप को संयत कर लेने की क्षमता बढ़ती जा रही है।

डॉ. शान्ति शेठ का कहना है कि विपश्यना के अभ्यास के समय शरीर के अंग-प्रत्यंग पर संवेदना मिलते ही आगे बढ़ जाते हैं, कहीं टिकते नहीं। संन्यासी भी किसी स्थान पर देर तक ठहरते नहीं। इससे संन्यासियों की स्थान-विशेष के प्रति और विपश्यी साधकों की शरीर के प्रति आसक्ति टूटने में सहायता मिलती है। उनका यह भी कथन है कि विपश्यना के अभ्यास से किसी बात को पकड़ने, जानने और समझने की मेरी शक्ति बढ़ी है। यही नहीं, मेरे चिकित्सा कार्य में भी बहुत लाभ पहुंचा है। मैं रोगियों की समस्याओं को बड़ी आसानी से भांप लेता हूं। मेरे द्वारा किया जाने वाला रोगों का निदान और चिकित्सा भी पूर्व की अपेक्षा अधिक सही होने लगी है और उपचार की अवधि भी काफी कम होने लगी है। रोगी भी अनुभव करने लगे हैं कि मैं कोई नीरस व्यक्ति नहीं बल्कि सजीव और सहृदय व्यक्ति हूँ।

बम्बई के मानस चिकित्सक डॉ. आर.एम.चोखानी की मान्यता है कि अब मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में **विपश्यना** बहुत लोकप्रिय होती जा रही है। स्थायी रूप से पीड़ा-ग्रस्त रोगियों की पीड़ा को दूर करने में परम्परागत चिकित्सा पद्धति के मुकाबले में यह साधना कहीं अधिक कारगर सिद्ध हो रही है। रोगी को **आनापान** करवाया जावे और चिकित्सक **मंगल मैत्री** देता रहे तो रोग का उपचार सरल हो जाता है। परन्तु इसके लिए चिकित्सक का अच्छा विपश्यी साधक होना आवश्यक है। सुबह-शाम रोगोपचार के बाद जब रोगी अपने घर लौटे और अपने निवास-स्थान पर **आनापान** का अभ्यास चालू रखे तो कुछ समय बाद वह देखेगा कि वह अपने स्वास्थ्य का रखवाला स्वयं होता जा रहा है।

श्री प्रवीणचन्द शाह ने व्यक्त किया है कि परिवार के सदस्यों के प्रति मेरी सहिष्णुता बढ़ी है। वह एक तुच्छ रिटायर्ड गृहपति हैं। उन्हें अचम्भा हुआ है कि किराया अधिनियम में किरायेदार का किराया बढ़ाने का प्रावधान न होते हुए भी उनके मकान की किराया-राशि में पर्याप्त वृद्धि हो गई है। सरकारी कार्यालयों में भी उनका कार्य बिना किसी कठिनाई के होने लगता है।

इस साधना के नियमित अभ्यास से आने वाली स्थितियों का पूर्वाभास होने लगता है। इसकी पुष्टि में डॉ. शान्ति शेठ ने अपने जीवन का एक रोचक प्रसंग प्रस्तुत किया है। वह एक बार किसी सम्मेलन में भाग लेने के लिए गए। उनके सामने वापस घर लौटने के लिए परिवहन की समस्या थी। तभी उन्हें अपना पड़ोसी दिखलाई दिया जिसके पास निजी वाहन था और उन्हें बार-बार कहता रहता था कि जब कभी आवश्यकता हो वह उसके वाहन को काम में ले लिया करें। उन्होंने सोचा मेरी समस्या का समाधान हो गया है। परन्तु सम्मेलन समाप्त होने पर वह जैसे ही **लिफ्ट** की मांग करने के लिए उस व्यक्ति के पास जाने लगे वैसे ही उनका मन संकोचशील होने लगा। वह जैसे-जैसे उस व्यक्ति के निकट जाते गए उतना-उतना संकोच बढ़ता चला गया। अन्ततः जैसे-तैसे अपनी झिझक को दूर कर उन्होंने उस व्यक्ति से उन्हें अपने साथ वाहन में घर ले जाने की बात कह डाली। परन्तु उसने कहा कि आज यह सम्भव नहीं होगा क्योंकि उसके परिवार के लोग आ रहे हैं और वे सब बम्बई की बजाय लोनावला जा रहे हैं। डॉ. शेठ का कहना है कि वह इस उत्तर से क्षुब्ध नहीं हुए बल्कि बहुत प्रसन्न हुए कि आखिर उनके अन्तःकरण की आवाज सही निकली।

आई. आई.टी., दिल्ली के प्रो. वी. एन. अरोड़ा का चिन्तन है कि अपने आप को समझाने के लिए **विपश्यना** की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। उन्होंने इसके समर्थन में कतिपय उदाहरण भी प्रस्तुत किए हैं। वर्ष

१९७६ में दुर्घटनाग्रस्त हो जाने के कारण उनकी पीठ में दर्द रहने लगा था। इसका निदान करवाने पर पता चला कि वहां की हड्डियों को क्षति पहुंचने से दर्द रहता है। इसका कोई इलाज न होने के कारण वह इसका दुःख भोगते रहे। उनके लिए **विपश्यना** करते समय पीठ को सहारा दिए बिना चंद मिनट बैठना भी बड़ा कष्टप्रद था, अतः उन्होंने पीठ को सहारा देकर ही बैठने का अभ्यास किया। एक बार शिविर के दौरान सहायक आचार्य ने परामर्श दिया कि पीठ को सहारा दिए बिना, भले कितनी ही पीड़ा हो, उस पीड़ा में से गुज़रें। जब ऐसा ही किया तो पीड़ा ने बांई जांघ से लेकर सिर के बाएं भाग तक एक निश्चित आकार ले लिया और उन्हें १९७६ की घटना की एकदम स्पष्ट पुनरावृत्ति हुई। उन्हें ऐसे लगा मानों कुछ मिनट पहले ही दुर्घटना हुई हो। सिर पर लगी चोट की भूली हुई स्मृति भी वापिस उभर आई। इस अनुभूति के बाद से उनकी दबावजनित पीड़ा समाप्त हो गई है। चाहे थोड़ी बहुत वेदना बनी रहती है जो हड्डियों के दोष के कारण है। पर इस प्रकार **विपश्यना** से ऐसा उपचार हो गया जैसा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से होता है।

बम्बई के प्रसिद्ध वकील श्री अशोक देसाई ने वकालत के पेशे में **विपश्यना** के प्रभाव की सराहना की है।

विपश्यना पर शोध

सेमिनार में **विपश्यना** विशोधन विन्यास की ओर से कुछ अत्यन्त उपयोगी लेख प्रस्तुत किए गए। किसी किसी विषय पर अन्य लेखकों ने भी अपने-अपने मत व्यक्त किए हैं। इसके फलस्वरूप निम्नांकित विषय उजागर हुए हैं –

(१) भगवान बुद्ध की मानव जाति को सबसे बड़ी देन---

बोध गया में महाबोधि वृक्ष के नीचे बैठ कर सिद्धार्थ गौतम ने सब विकारों का प्रहाण कर अर्हत्व प्राप्त किया। पंचवग्गिय भिक्षुओं को उन्होंने सारनाथ में अपना पहला धर्मोपदेश दिया जो **धम्मचक्कपवत्तन सुत्त** कहलाता है। इस सुत्त का सार चार आर्यसत्य हैं जिनका इसमें प्रतिपादन किया गया है। ये आर्यसत्य हैं– दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध तथा दुःखनिरोधगामिनिपटिपदा। आम तौर पर ऐसा माना जाता है कि ये चार आर्य सत्य **(चत्तारि अरियसच्चानि)** भगवान गौतम बुद्ध की मानवजाति को सबसे बड़ी देन है। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि **दुःखनिरोधगामिनिपटिपदा** ही सबसे बड़ी देन है क्योंकि इनसे पूर्व भी लोग बौद्धिक स्तर पर दुःख के अस्तित्व, दुःख के समुदय तथा दुःख के निरोध के बारे में जानकारी रखते थे और योगाभ्यास, समाधियों और ध्यान का आश्रय लेकर चित्त के ऊपरी ऊपरी हिस्से से विकारों को दूर करने में भी सक्षम थे परन्तु अंतर्मन की गहराइयों में बैठे हुए अनुशय क्लेशों को बाहर निकालने में असमर्थ थे। उस समय के आचार्य ने पाया कि अन्तर्मन में विकारों की जड़ें बदस्तूर कायम हैं। अतः उन्होंने छः वर्षों तक घोर तपस्या करके विकारों की जड़ों से भी छुटकारा पाने का मार्ग ढूँढ निकाला। यह मार्ग **आर्य अष्टांगिक** मार्ग कहलाता है जिससे निर्वाण का साक्षात्कार हो जाता है। शील, समाधि, तथा प्रज्ञा पर आधारित यह मार्ग पूर्णतया अनुभूति-परक है। केवल बुद्धिविलास करके निर्वाण प्राप्त करना असम्भव है।

प्रो. वी एन. अरोड़ा ने भी अपने लेख में व्यक्त किया है कि मानव की समस्याओं को सुलझाने के लिए भगवान् बुद्ध ने तीन अंगो वाले **आर्य अष्टांगिक मार्ग** का प्रतिपादन किया। ये तीन अंग हैं– शील, समाधि और प्रज्ञा। ये तीनों एक दूसरे के पूरक हैं अर्थात **शील** पुष्ट होने पर समाधि तथा प्रज्ञा, **समाधि** पुष्ट होने पर शील तथा प्रज्ञा और **प्रज्ञा** पुष्ट होने पर शील तथा समाधि पुष्ट होने लगते हैं।

(२) वयधम्मा सङ्खारा

भगवान बुद्ध का बुद्धत्व इसमें है कि उन्होंने ऐसा मार्ग खोज निकाला जिससे सच्चाई को अनुभूति पर उतारने लगते हैं। ज्योंही मन का मैलापन दूर होने लगता है, सब संस्कार एक-एक करके नष्ट होने लगते हैं और वह शनैः शनैः अपने मूल स्वरूप में आ जाता है। अर्थात अनन्त मैत्री, अनन्त करुणा, अनन्त मुदिता तथा अनन्त उपेक्षा **(समताभाव)** में हिलोरें लेने लगता है। जीवन के अन्तकाल में भगवान ने प्रतिपादन किया –**वयधम्मा सङ्खारा** अर्थात सब संस्कार व्ययधर्मा हैं (नष्ट हो जाना इनका स्वभाव है)। अपने अन्तिम श्वासों के साथ भगवान् ने फिर दोहराया, जो जीवन भर भी दोहराते रहे **अप्पमादेन सम्पादेथ,** अर्थात बिना प्रमाद किए यत्न करते रहें, यत्न करते रहें। यत्न किस बात का? संस्कार-विहीन होने का। क्योंकि देर-सवेर नष्ट हो जाना संस्कारों का स्वभाव है, अतः इनसे जल्दी से जल्दी मुक्ति पाने का श्रम किया जाना चाहिए।

श्री निरंजन एस. मेहता ने भी अपने लेख में इस विषय की चर्चा करते हुए कहा है कि विपश्यना के अभ्यास से कर्म-बन्धनों से जल्दी छुटकारा पाया जा सकता है। इस साधना-विधि से नए संस्कार बनाना बन्द कर सकते हैं और जब ऐसा होने लगता है तब पुराने संस्कारों की उदीर्णा होकर निर्जरा होने लगती है जिससे मानस नितान्त निर्मल हो जाता है।

(३) प्रज्ञा

प्रज्ञा से तात्पर्य **यथाभूतज्ञानदर्शन** से है, अर्थात् जो जैसा है उसे वैसा ही, उसके सही रूप में देखना। सभी प्राणियों का सही स्वरूप यही है कि वे अनित्य हैं, दुःखी हैं और निःसार हैं। शरीर पर होने वाली संवेदनाओं से अनुभूतिपूर्वक ज्ञान पैदा होता है जिससे अनित्यता, दुःख के अस्तित्व और अनात्मत्व का स्पष्ट बोध होने लगता है। जब कोई चलते फिरते, उठते बैठते, खाते पीते, नहाते धोते, प्रत्येक अवस्था में इन तीनों की अनुभूति करता रहता है वह **स्थितप्रज्ञ** कहलाता है।

डॉ. पॉल फ्लैशमैन का कथन है कि **अनिच्च** (अनित्यता) किसी भी धारणा से परे की सत्यता को जतलाता है। संसार में कुछ भी घन, स्थायी, अपरिवर्तनशील नहीं है। सब कुछ एक घटना के समान है। कोई पत्थर भी किसी नदी का ही रूप है और पर्वत एक धीमी तरंग मात्र है। भगवान ने प्रग्यापित किया था **सब्बे संङ्खारा अनिच्चा,** अर्थात जो कुछ बना हुआ अथवा जुड़ा हुआ प्रतीत होता है वह अनित्य है। परन्तु फिर भी अनित्यता के प्रति बड़ा भारी प्रतिरोध होता है क्योंकि इससे हमारी अपनी प्रतिमा, जिससे हमारा बेहद चिपकाव है, खण्डित होने लगती है। हम अपनी प्रतिमा को किसी भी कीमत पर अक्षुण्ण बनाए रखना चाहते हैं परन्तु यह एक कटु सत्य है कि यह **संसार** अनित्य है।

दिल्ली विश्वविद्यालय के पालि एवं बुद्धिस्ट स्टडीज विभाग के प्रो. डॉ. महेश तिवारी ने बतलाया है कि **संसार** की अवस्था समाप्त होकर **निर्वाण** की अवस्था कैसे प्राप्त हो इसके लिए **पटिच्चसमुप्पाद** नामक सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है। इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि कौन सी स्थिति किस कारण से अस्तित्व में आती है और उस कारण के समाप्त हो जाने पर कैसे वह स्थिति भी समाप्त हो जाती है। भवचक्र की १२ कड़ियां गिनाई गई हैं - अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नामरूप, षड़ायतन (छः इन्द्रियां), स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति (जन्म) तथा जरामरण (बुढ़ापा एवं मृत्यु)। इनमें से जब कोई कड़ी टूट जाए तो भवचक्र का उच्छेद हो जाता है। भगवान बुद्ध ने प्रतिपादित किया है कि जो **पटिच्चसमुप्पाद** के सिद्धान्त को जानता है वह **धर्म** समझता है और जो **धर्म** को समझता है वह **पटिच्चसमुप्पाद** के सिद्धान्त को जानता है।

प्रो. तिवारी ने और भी स्पष्ट किया है कि अनन्त काल से **तृष्णा** को अपनी संगी बनाकर मनुष्य एक के बाद दूसरा जन्म लेता रहता है। तरह-तरह के दु:ख भोगने के बाद वह बार-बार काल का ग्रास बन जाता है। जन्म-मरण का यह तांता चलता ही रहता है। इसे ही **संसार कहते हैं।** यदि मनुष्य को सही रूप में यह **भान** होने लगे कि इस प्रक्रिया में से गुजरते हुए किस कदर दु:ख झेलने पड़ते हैं और इसका मूल कारण **तृष्णा** है तो मनुष्य पहले के और आगे के बंधनों से मुक्त होकर प्रज्ञापूर्वक विरक्ति का जीवन जीने लगे और शनैः शनैः तृष्णा का नाश कर ऐसी अवस्था पर पहुंच सकता है, जो भवातीत है। इसी को **निर्वाण की अवस्था** कहते हैं।

तृष्णा कैसे सताती है इसका विवरण पूना की श्रीमती ऊषा मोडक ने अपने लेख में प्रस्तुत किया है। हर समय पेट भरने और जेब भरने में लगा हुआ मनुष्य अपनी तृष्णाओं का दास बना हुआ है। व्हील चेयर पर बैठा हुआ अपंग व्यक्ति उसके पास से गुजरने वाली स्वस्थ टांगों की स्पृहा करने लगता है, पैदल चलने वाला व्यक्ति स्कूटर पर सरपट भागते हुए व्यक्ति से स्पृहा करने लगता है, स्कूटर पर चलने वाला व्यक्ति मोटर गाड़ी चलाने वाले से ईर्ष्या करता है, इत्यादि। किसी एक समस्या का समाधान हो नहीं पाता कि इससे पहले कोई दूसरी समस्या सिर उठा लेती है। इस प्रकार दु:ख के बाद दु:ख आता ही रहता है।

(क्रमशः)